Music Journal *Vageeshwari The World Classical Music e-Research Journal*
Volume 36 *December 2022*
Page No. 64-71 *ISSN 0975-7872*

Copyright@2022 Author(s) retain the copyright of this article
Homepage : ejournal@mfa.du.ac.in
Publisher : Department of Music, Faculty of Music & Fine Arts, University of Delhi

No part of contents of this paper may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the permission of Author

संगीत तथा प्रकृति का पारस्परिक सम्बन्ध

डॉ. जगबन्धु प्रसाद
एसोसिएट प्रोफेसर
संगीत विभाग, संगीत एवं ललित कला संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

संकेत शब्द : संगीत, प्रकृति, राग, समय, ऋतु

सार : प्रकृति का प्रत्येक तत्व संगीतमय है। शास्त्रीय संगीत में रागों का समय निर्धारण प्रकृति के विविध रंगों के अनुरूप ही किया गया है। प्रातः काल में गाये बजाये जाने वाले राग और संध्याकाल या रात्रिकाल के राग अलग–अलग हैं। विभिन्न ऋतुओं के अनुसार भी विशेष राग प्रस्तुति की परिकल्पना शास्त्रीय संगीत में दृष्टिगोचर होता है, जैसे– बंसत ऋतु में राग बसंत, बहार तथा वर्षा ऋतु में मल्हार आदि। शास्त्रीय संगीत में रागों की प्रकृति (अर्थात् गम्भीर, चंचल इत्यादि) का भी वर्णन शास्त्रों में प्राप्त होता है।

संगीत तथा प्रकृति के अभिन्न सम्बन्ध को प्रत्येक संवेदनशील मनुष्य महसूस करता है। संगीत जड़–चेतन सभी में व्याप्त है। नदियों की कल–कल ध्वनि, हवा के झोंकों से खड़खड़ाते पत्तें सभी में संगीत की ध्वनि व्यक्ति महसूस करता है। पशु–पक्षी, कीट पतंगों की बोलियाँ, भौरों की गुंजार, पक्षियों की मधुर चहचहाट, कोयल की मधुर तान, और मोर की तार सप्तक की ध्वनि ये सभी प्रकृति में संगीतमय वातावरण उत्पन्न करते हैं।

प्रकृति शब्द की व्युत्पत्ति 'प्र' उपसर्ग और 'कृ' धातु के पश्चात् 'क्तिन' (ति) प्रत्यय के योग से निष्पन्न हुआ है। इसका अर्थ प्रकरण, संदर्भ विशेष रचना, अधिक रचना, आदि अनेक अर्थों में ग्रहण किया जाता है। लेकिन लोक व्यवहार के अन्तर्गत प्रकृति से अभिप्राय प्राणी, जीव–जन्तु, पेड़–पौधें, नद–नदीश, आदि, दृश्यमान पदार्थों से लिया जाता है। इस विषय में यह विचारणीय है कि ऐसा जरूरी नहीं कि शब्द के व्युत्पत्तिपरक अर्थ एवं लोक–व्यवहार में प्रचलित अर्थ में पूर्ण समानता हो।[1] परन्तु लोक व्यवहार में प्रचलित शब्द के अर्थ से धातुगत अर्थ का पूर्णताः भले ही सम्बन्ध न हो किन्तु अंशतः वह उस अर्थ से अवश्य जुड़ा होता है। इस दृष्टि से प्रकृति शब्द भी अपने धातुगत अर्थ से सम्बन्ध रखता है, क्योंकि समस्त जगत् का आधारभूत तत्व प्रकृति है। प्रत्येक कार्य अपने कारण से उत्पन्न होता है। वह कारण भी अपने सूक्ष्मतर कारण से उत्पन्न होता है, इस प्रकार ऊपर की ओर जाते–जाते जहाँ यह कारण की श्रृंखला समाप्त होती है, वहीं सूक्ष्मतम तत्व प्रकृति

ISSN 0975-7872

Copyright@2022 Author(s) retain the copyright of this article
Homepage : ejournal@mfa.du.ac.in
Publisher : Department of Music, Faculty of Music & Fine Arts, University of Delhi
No part of contents of this paper may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the permission of Author

है जो सबका मूल कारण है तथा जहाँ से यह विश्व उदय होता है।[2] इसके अतिरिक्त भारतीय वाङ्मय में प्रकृति शब्द को सृष्टि, माया, शाश्वत सत्य, प्रजा, विचार–शून्य, स्वभाव आदि विविध अर्थों में माना जाता है। प्रकृति के इन विविध अर्थों के अन्तर्गत प्रकृति का क्षेत्र व्यापक बन जाता है और समस्त ब्रह्माण्ड ही प्रकृति की परिधि में आ जाता है। क्षेत्र की व्यापकता और स्वरूप की सूक्ष्मता के आधार पर प्रकृति की तीन अवस्था अपनी–अपनी सीमाओं में बद्ध है–(1) मानवेतर जड़–चेतन समुदाय को प्रकृति कहता है (2) जड़–चेतन समुदाय के परस्पर सापेक्ष गुण और स्वभाव को (3) सृष्टि की उस उत्पादिका शक्ति को, ईश्वर सापेक्ष और सृष्टि सापेक्ष दोनों ही है। साहित्य के अन्तर्गत इन तीनों 'रूपों' में 'प्रकृति' शब्द का व्यवहार होने के कारण किसी भी प्रकार का सीमा बंधन नहीं कहा जा सकता, परन्तु साहित्य–शास्त्र में जब इसे विशिष्ट वर्णन पद्धति के साथ सम्बद्ध कर दिया जाता है, तो इसका क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित हो जाता है।[3] इसी प्रकार प्रकृति को विभिन्न दृष्टिकोणों से समझने के उपरांत प्रकृति के अर्थ को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि ''प्रकृति शक्ति की वह अवस्था है, जो माया और उसके कंचुको से आवृत होने से उत्पन्न होती है। पुरुष भोक्ता है और प्रकृति भोग्या है। सगुण शिव को अपने कुंचकों द्वारा आवृत करके यह जहाँ उसकी शक्तियों को सीमित करती है, वही उसके संकुचित होने के साथ–साथ स्वयं भी संकुचित हो जाती है। तंत्रों में स्वीकृत 36 तत्त्वों में से एक प्रकृति भी है। वहाँ इसे अशुद्ध तत्त्वों के अन्तर्गत रखा जाता है। प्रकृति शिव के स्थूल रूप सत्त्व, रज और तम नामधारी गुणों की साम्यावस्था है।[4]

प्रकृति के विषय में विचार करते हुए डॉ. किरण कुमारी गुप्ता का मत है कि प्रकृति के अन्तर्गत उन्हीं उपकरणों को मानना चाहिए जिनका विकास मानव के योगदान से परे है। प्रकृति का प्राकृतिक अर्थ है–स्वाभाविक। अतः प्रकृति के अन्तर्गत वही वस्तुएँ आती हैं, जिन्हें मानव के हाथों ने सजाया या संवारा नहीं है और जो स्वयं ही अपनी नैसर्गिक छटा से हमें आकर्षित करती है।[5]

प्राचीन काल से संगीत और प्रकृति का घनिष्ठतम सम्बन्ध रहा है। संगीत स्वर, लय और ताल का सुन्दर समन्वय है। ताल अथवा निश्चित क्रम (लय) प्रकृति का एक मुख्य नियम है। यह हमें पृथ्वी की सूर्य परिक्रमा में, दिन–रात के बीतने में तथा ऋतुओं के परिवर्तन में पूर्णरूप से देखने को मिलता है। अगर प्रकृति में इस लय का अभाव होता तो कोई दिन–रात 20 घंटे का, कोई 28 घंटे का और कोई 30 घंटे का होता। इस प्रकार तो सूर्योदय और सूर्यास्त का कोई समय निश्चित नहीं हो पाता। प्रत्येक मनुष्य का जीवन इस लय पर आधारित है। उसके रुधिर–संचार में लय की गति धीमी या द्रुत हो जाती है, तो औषधि सेवन की आवश्यकता होती है। परन्तु जब लय की गति

Copyright@2022 Author(s) retain the copyright of this article
Homepage : ejournal@mfa.du.ac.in
Publisher : Department of Music, Faculty of Music & Fine Arts, University of Delhi
No part of contents of this paper may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the permission of Author

बिल्कुल स्थिर हो जाती है तो उस मनुष्य के प्राण पखेरू सदा के लिए उस काया से उड़ जाता है। इस प्रकार से संगीत अथवा लय प्रत्येक मनुष्य में सचेत अथवा अचेत रूप में कार्य करती रहती है।

संगीत का दूसरा प्रधान अंग 'स्वर' है। स्वरों के योग से रागों की उत्पत्ति होती है। राग और प्रकृति का अटूट साथ है। राग को चित्ताकर्षक बनाने के लिए अमुक राग का गायन अथवा वादन शास्त्रकारों द्वारा निर्धारित समयानुसार होना चाहिए। रागों का समय विभाजन गायक और श्रोता के शारीरिक और मानसिक दशाओं के आधार अनुसार किया गया है, यह केवल कपोल कल्पना नहीं है। चिकित्सा शास्त्र द्वारा यह विदित होता है कि नाड़ियों के तीन प्रकार है–कफ़, पित्त, और वात। कफ़ प्रकृति की गति प्रातःकाल 3 बजे से लेकर 9 बजे तक रहती है, इसलिए इस समय के बीच उन्हीं रागों का गायन अथवा वादन होता है जिसकी प्रकृति कफ़ की होती है, जैसे–भैरव, गुणकली राग इत्यादि। इसी प्रकार पित्त और वात की गति क्रमशः दिन और रात में रहा करती है इसलिए दिन में पित्त प्रकृति के राग जैसे–सारंग, पीलू, मुल्तानी राग, इत्यादि तथा रात में वात प्रकृति के राग जैसे–मालकौंस, दरबारी, जयजयवन्ती राग, इत्यादि गाये बजाये जाते हैं।

रागों में विकृत स्वरों का प्रयोग भी प्रकृति के नियमों पर आधारित है। निशोत्सर्ग और सूर्योदय के समय मनुष्य कुछ ऊँघता और शिथिल सा रहता है, इसलिए इस समय कोमल रिषभ और कोमल धैवत का प्रयोग होता है। सुबह के समय निन्द्रा का प्रभाव रहता है और सायंकाल दिनभर काम करने के उपरान्त थकावट महसूस करता है। कुछ समय के बाद उसकी शिथिलता समाप्त होने लगती है, इसलिए शुद्ध रे और शुद्ध ध स्वरों का प्रयोग रागों में होने लगता है, जैसे– दिन गाये जाने वाले राग देशकार, बिलावल इत्यादि और रात में गाये जाने वाले राग यमन, हमीर तथा भूपाली आदि। रात भर सोने के बाद मनुष्य एक नई शक्ति का अपने आप में अनुभव करने लगता है, इसीलिये प्रातःकालीन राग उत्तरांग प्रधान होते हैं, अर्थात् उन रागों का चलन सप्तक के उत्तरांग (प ध नी सां) में प्रधानता रहती है और ठीक विपरीत सायंकालीन रागों में पूर्वांग अंग (स रे ग म) की प्रधानता रहती है क्योंकि मनुष्य दिन भर के कठोर परिश्रम से थकान हो जाती है, इसलिए इस समय में गाये जाने वाले राग पूर्वांग प्रधान होते हैं, जो कि मनुष्य के स्वभावानुकूल हैं।

कुछ रागों के स्वर ऐसे होते हैं जिनकी प्रकृति तेजस्वी, उग्र, तीक्ष्ण, अग्निमय, शीतलता, आदि गुणों से युक्त होते हैं। जिस कारण रागों के ऋतुओं के अनुसार गाने की भी परम्परा है। प्रत्येक राग विशिष्ट भावनाओं से सम्बन्धित होने के कारण अपना विशिष्ट वातावरण उपस्थित करता है।

Copyright@2022 Author(s) retain the copyright of this article
Homepage : ejournal@mfa.du.ac.in
Publisher : Department of Music, Faculty of Music & Fine Arts, University of Delhi

No part of contents of this paper may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the permission of Author

हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत में रागों की विभिन्न प्रकृति के बारे में वर्णन प्राप्त होता है। जिस प्रकार हर मनुष्य की अपनी–अपनी अलग प्रकृति (स्वभाव) होती है उसी प्रकार रागों की भी अपनी प्रकृति होती है, जो प्रयुक्त स्वरों के लगाव तथा चलन पर निर्भर करती है, जैसे– राग दरबारी, भैरव, मालकौंस आदि राग गम्भीर प्रकृति तथा राग अड़ाना, बहार और कामोद आदि राग चंचल प्रकृति के राग है। राग शंकरा वीर रस तथा राग जोगिया, भैरवी, कालिंगड़ा में करूणा का भाव दृष्टिगोचर होता है।

हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में रागों के गाए–बजाए जाने के सम्बन्ध में समय सिद्धान्त पर मतभेद अवश्य है, जिसका कारण रागों के स्वरों में उलटफेर हो जाना है, तथापि यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि हमारे संगीत पंडितों ने रागों को ठीक समय पर गाने का सिद्धान्त अपने ग्रन्थों में स्वीकृत किया है। शारंगदेव ने अपने ग्रन्थ 'संगीत रत्नाकर' में प्रत्येक वर्ग के रागों का सम्बन्ध ऋतुओं से स्थापित किया है, जैसे–गौड़ पंचम ग्रीष्म ऋतु में, भिन्न षड्ज हेमन्त ऋतु में, हिन्डोल बसन्त ऋतु में, और रात्रि शरद ऋतु में। इसी प्रकार दिन तथा रात्रि में गाए–बजाए जाने वाले राग एवं भिन्न–भिन्न ऋतुओं में गाए जाने वाले रागों का उल्लेख भी शारंगदेव ने किया।[6] फ़कीरूल्ला के अनुसार, ''राग दर्पण के पाठकों तथा संगीत विद्या के जिज्ञासुओं को ज्ञान हो कि देवताओं ने इस विद्या को उत्पन्न किया है और एक वर्ष में षट् ऋतुओं के ऊपर षट् राग स्थिर किए। षट् ऋतुएं इस प्रकार है–बसन्त ऋतु अर्थात् चैत और वैशाख, ग्रीष्म ऋतु–ज्येष्ठ और आषाढ़, सावन और भादो, शरद ऋतु आसोज (क्वार) तथा कार्तिक, हेमन्त ऋतु–अगहन और पौश, शिशिर माह तथा फाल्गुन। षट् ऋतुओं का वर्णन करने के बाद उनमें राग–रागिनियों एवं पुत्रों का वर्णन किया जाता है। बसन्त ऋतु में हिण्डोल राग तथा उसकी रागिनियाँ एवं पुत्रों को गाया जाता है। ग्रीष्म ऋतु का राग दीपक है। पावस का राग मेघ है, और शरद का श्री रखा है। हेमंत का मालकौंस तथा शिशिर का भैरव राग है। इस प्रकार फ़कीरूल्ला का राग गायन सम्बन्धी ऋतु सिद्धान्त है।[7] आधुनिक संगीत में राग ऋतु सिद्धान्त का विशेष महत्व नहीं रहा है, किन्तु ऋतुओं में बसंत तथा वर्षा ऋतु, राग के गायन तथा वादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण ऋतु है, जिनके अनुसार आधुनिक संगीत में राग गायन प्रचलित है।

प्रकृति में सुदूर तक फैले हुए भिन्न–भिन्न फूलों के सौन्दर्य को देखकर तथा प्रकृति में फैली हुई बहार को देखकर स्वतः ही गले से बसंत–बहार के स्वर फूट पड़ते हैं बसंत, बहार तथा बसंत–बहार आदि ये राग विशेषतः बसंत ऋतु में गाये–बजाये जाते हैं। इन रागों के लिए ''बसंततौ सुखप्रदः'' कहा गया है। गरजते हुए मेघ तथा उमड़ी हुई घटा को देखकर किस गायक

Copyright@2022 Author(s) retain the copyright of this article
Homepage : ejournal@mfa.du.ac.in
Publisher : Department of Music, Faculty of Music & Fine Arts, University of Delhi

No part of contents of this paper may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the permission of Author

या वादक का मन नहीं होगा कि वो मल्हार के सुर न छेड़े। मल्हार तथा उसके प्रकारों को वर्षा ऋतुओं में विशेष रूप से किसी भी समय गाया बजाया जाता है। मल्हार के लिए ''वर्षासु सुखदायकः'' इस प्रकार कहा गया है। इन रागों के गीतों में प्रायः ऋतु सम्बन्धी वर्णन होता है जो और भी आनंददायक होता है।

संगीत तथा प्रकृति का सम्बन्ध अभिन्न है। संगीत के स्वरादि की उत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक किंवदन्ती, कथाएं, प्रसंग, तथा शास्त्रकारों व विद्वानों के मत प्राप्त होते हैं। कुछ प्रसांगादि तथा विद्वानों के स्वरोत्पत्ति सम्बन्धी विचार प्रस्तुत किया जा रहा है–

स्वामी प्रज्ञानानन्द के मतानुसार आदिम युग में संगीत मनुष्य के अन्तःकरण में निहित था। विविध कार्यों में मनुष्य अपने से अधिक शक्तिशाली प्रकृति को समझता था। विभिन्न पशु–पक्षियों की ध्वनि को वह मंगल या अमंगल का प्रतीक मानता था। अनुकरण प्रिय मनुष्य उन ध्वनियों की सहायता से अर्थहीन भाषा के संगीत से विश्व देवता की वंदना करना था सम्भवतः वह संगीत एक या दो स्वर का होता था। सप्त स्वरों का विकास काल क्रम में हुआ, इसी शृंखलानुसार संगीत की उत्पत्ति हुई।[8]

मतंग कृत 'बृहद्देशीय' ग्रंथ में 'कोहलः' के नाम से निम्न श्लोक वर्णित है जिसमें संगीत के स्वरों का उद्गम पशु–पक्षियों की ध्वनियों से हुआ है–

षड्जं वदति मयूरो, ऋषभं चातको वदेत।
अजा वदंति गांधारं, क्रौंचो वदति मध्यमम्।।

पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पंचमं वदेत्।
प्रावृट्काले संप्राप्ते धैवतं दर्दुरो वदेत्।
सर्वं (ता?दा) च तथा देवि ! निषादं वदते गजः।।9

अर्थात् मोर षडज में बोलता है, चातक ऋषभ में, अजा गंधार में, जबकि क्रोंच मध्यम स्वर में बोलता है। नये पुष्प अंकुरण काल में कोयल पंचम स्वर में बोलती है। मेढ़क धैवत स्वर में बोलता है और हाथी निषाद स्वर का उच्चारण करता है।

फारसी की एक कथा के अनुसार पैगम्बर हज़रत मूसा को नाव में सैर करते समय एक पत्थर दिखाई दिया। ब्राइल नामक फरिश्ता के कथानुसार हज़रत मूसा उस पत्थर को अपने पास रखते थे। एक दिन जंगल में घूमते समय उन्हें प्यास लगी। खुदा की बदंगी करने के पश्चात् कुछ देर

Copyright@2022 Author(s) retain the copyright of this article
Homepage : ejournal@mfa.du.ac.in
Publisher : Department of Music, Faculty of Music & Fine Arts, University of Delhi
No part of contents of this paper may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the permission of Author

बाद वर्षा हुई। वर्षा की जलधाराओं का उस पत्थर पर पड़ने से उसके सात टुकड़े हो गये और उनसे सात ध्वनियाँ निकली जिसे हज़रत मूसा ने आत्मसात कर लिया। ये ही सात ध्वनियाँ सात स्वर बनी।[10]

एक फारसी विद्वान का कथन है कि पहाड़ों पर 'मूसीकार' नामक का एक पक्षी होता है, जिसकी चोंच में बांसुरी की भांति सात सुराख होता है। उन्हीं सात सुराखों से सात स्वर ईजाद हुआ।[11] मिश्री कला विशेषज्ञ गावास का कथन है–''मनुष्य ने संगीत का मनोरम उपहार प्रकृति से उपलब्ध किया। उसने अपने जीवन के इर्द–गिर्द संगीतमय वातावरण को देखा। सरिताओं की ऊँची–नीची लहरों से, सागर की उतंग तरंगों से, पक्षियों के प्रलुब्धकारी कलरव से, समीर के मधुर शीतल झोंकों की अंगड़ाईयों से, चाँद और रजनी की प्रलुब्ध क्रीड़ाओं से मतलब ये कि उसे प्रत्येक दिशा में संगीत के मधुर स्वर प्रस्फुटित होते हुए सुनाई दिये। प्रकृति के ये मधुर स्वर अनुकरण करते ही मनुष्य के जीवन में एक नवीन सरसता का उदय हुआ। जीवन में इसी सरसता एवं मिठास को अक्षुण्ण रखने के लिए मनुष्य ने स्वरों पर अधिक विचार प्रारम्भ कर दिया। उसी विचार का यह परिणाम हुआ कि आगे चलकर विश्व को संगीत परिष्कृत रूप में प्राप्त हो सका।[12]

एक कथानुसार एक दिन स्वाति नामक ऋषि अपने आश्रम से पानी लेने के लिए सरोवर गये। संयोग से उसी समय वर्षा होने लगी। वर्षा की बूँद पहले मंद गति से फिर तीव्र गति से सरोवर में लिखे कमलों की छोटी–छोटी पंखुड़ियों पर गिरने लगी। ऐसा होने से अनेक प्रकार की ध्वनियाँ उत्पन्न होने लगी। स्वाति को वे सब ध्वनियाँ बहुत कर्णप्रिय लगी और उनके स्वरूप को अपने मस्तिष्क में ठीक से धारण करके वे वापस आ गये। वापस आकर उन्होंने विश्वकर्मा जी को वह सब दृश्य बताया और किसी ऐसे वाद्य के निर्माण करने को कहा जिससे सब प्रकार की ध्वनियाँ निकलती हो।[13]

संगीत के प्रभाव से वनस्पति तथा पशु–पक्षियाँ भी अछूते नहीं है, अनेक कथा, प्रसंग तथा प्रयोग द्वारा यह बात सिद्ध होती है। कहा जाता है कि संगीत–सम्राट तानसेन जिस बाग में बैठकर गाया करते थे, वहाँ कलियाँ खिलकर फूल बन जाती थी। संगीत की स्वर लहरियाँ पौधों के नाड़ी–तंत्र में तेज़ी से हलचल पैदा कर व न्यूक्लियस में संचालन कर उनके विकास व वृद्धि पर प्रभाव डालती हैं। आज वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि संगीत की स्वर–लहरियों से पेड़–पौधे तेज़ी से पल्लवित होते हैं। सुप्रसिद्ध भारतीय वैज्ञानिक जगदीश चन्द्र बसु ने वनस्पतिशास्त्र–सम्बन्धी विशेष अनुसंधान द्वारा प्रमाणित कर दिया था कि वनस्पति में भी जीव है। पं0 ओंकारनाथ ठाकुर ने उनकी प्रयोगशाला में जाकर एक बार भैरवी गाई थी। गाने से पूर्व यंत्रों द्वारा पौधों व पत्तों की

Copyright@2022 Author(s) retain the copyright of this article
Homepage : ejournal@mfa.du.ac.in
Publisher : Department of Music, Faculty of Music & Fine Arts, University of Delhi

No part of contents of this paper may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the permission of Author

अवस्था देख ली गई थी और गायन के बाद उन पर आई हुई नई चमक का दर्शन भी लोगों ने किया था। वस्तुतः मधुर स्वर सुनकर वृक्षों के प्रोटोप्लाज़्म के कोष में स्थित क्लोरोप्लास्ट विचलित और गतिमान हो उठता है। डॉ0 टी0 ऐन0 सिंह ने विभिन्न रागों की ध्वनियों का पौधों पर परीक्षण किया। प्रो0 सिंह के अनुसार, उचित समय पर उचित राग का एक दिन में तीस मिनट तक गायन से पौधों की वृद्धि में शीघ्रता लाता है, परन्तु प्रयुक्त राग की ध्वनि–तरंगों की गति उच्च और तीव्र होनी चाहिए। प्रो0 सिंह ने अनेकों बीजों, धान, सरसों, चना, सेम आदि पर संगीत की ध्वनि के प्रभाव का अध्ययन किया। अपने प्रयोग में श्री सिंह ने नई बात यह देखी कि पौधे पुरुष संगीत की अपेक्षा स्त्री संगीत से अधिक प्रभावित व विकसित होते हैं। पौधों पर रागों का प्रयोग कर श्री सिंह ने निष्कर्ष निकाला कि राग काम्बोजी की बाँसुरी पर, खरहर प्रिया को वीणा पर और बहार को वायलिन पर बजाने से पौधों पर बहुत प्रभाव पड़ता है।[14]

वनस्पतियों के समान ही पशु–पक्षियों पर भी संगीत का प्रभाव पड़ता है। किंवदन्ती है कि राजा उदयन संगीत से हाथियों को वश में कर लेते थे। आज भी पखावज बजाने वाले एक विशेष प्रकार की परन (गज–परन) बजाकर हाथियों को वश में कर लेने का दावा करते है। तानसेन का संगीत सुनकर मृगों के झुंडों का चमत्कृत होकर उनके पास चले आने की कथा प्रसिद्ध है। आधुनिक समय में भी मृग–आखेट के लिए संगीत का प्रयोग किया जाता है।

एस0 कुमार के लेख 'संगीत जानवरों पर भी असर डालता है' में यह बताया गया है कि बत्तख, बंदर, उकाव आदि पक्षी और दरियाई घोड़ा, शेरनी, वन–बिलाव और मगरमच्छ पर विभिन्न वाद्यों को सुनाकर परीक्षण किए गए और उनकी प्रतिक्रिया प्राप्त की गई। डार्विन के विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार, पशु मानवों के पूर्वज हैं। अग्रज पूर्वजों के गुणों के संवाहक होते हैं इसीलिये जब पशुओं पर संगीत का प्रभाव पड़ सकता है तो मनुष्य पर उसका प्रभाव पशुओं से कई गुना अधिक माना जा सकता है।[15]

संदर्भ सूची :

1. आचार्य विश्वनाथ, साहित्य दर्पण, अन्यद्धि शब्दानों व्युत्पत्तिनिमित्तमन्यच्च प्रवृत्तिनिमित्तम, पृ0–2
2. उपाध्याय, डॉ0 बलदेव, भारतीय दर्शन (सांख्य दर्शन), पृ0–335
3. उपाध्याय, डॉ0 बलदेव, भारतीय दर्शन (सांख्य दर्शन), पृ0–335

Copyright@2022 Author(s) retain the copyright of this article
Homepage : ejournal@mfa.du.ac.in
Publisher : Department of Music, Faculty of Music & Fine Arts, University of Delhi
No part of contents of this paper may be reproduced or transmitted in any form or by any means without the permission of Author

4. वर्मा, धीरेन्द्र, हिन्दी साहित्यकोश (भाग–1), पृ0–392
5. गुप्ता, डॉ0 किरण कुमारी, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, पृ0–8
6. वसंत, संगीत विशारद, पृ0–546–547
7. पाठक, डॉ0 सुनंदा, हिन्दुस्तानी संगीत में राग की उत्पत्ति एवं विकास, पृ0–290–291
8. शर्मा, अमलदास, संगीतायन, पृ0–16
9. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0–7
10. बसंत, संगीत विशारद, पृ0–13
11. देवांगन, तुलसीराम, भारतीय संगीत शास्त्र, पृ0–16
12. जोशी, उमेश, भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0–6
13. शर्मा, स्वतंत्र, भारतीय संगीत एक ऐतिहासिक विश्लेषण, पृ0–5
14. श्रीवास्तव, डॉ0 संगीता, संगीत का वनस्पतियों पर पड़ने वाला प्रभाव, संगीत पत्रिका, सितम्बर, 2005, पृ0–35
15. कुमार, श्री एस0, संगीत जानवरों पर भी असर डालता है, संगीत पत्रिका, सितम्बर, 1981, पृ0–43